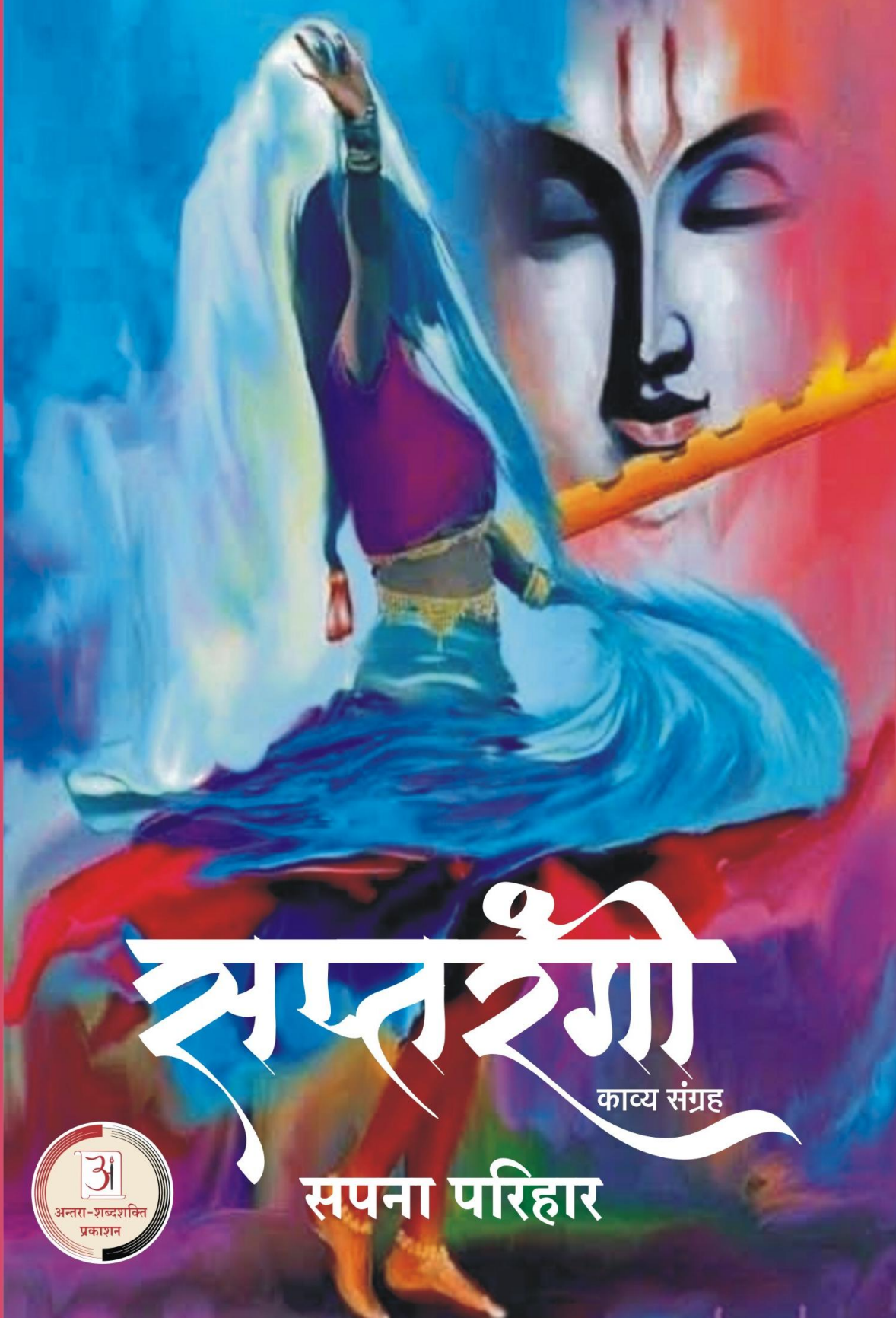

सप्तरंगी

सप्तरंगी

काव्य संग्रह

सपना परिहार

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

सप्तरंगी

सपना परिहार

अन्तरा शब्दशक्ति प्रकाशन
वारासिवनी, मध्यप्रदेश

978-93-5372-240-1

संपादक- डॉ. प्रीति समकित सुराना

तकनीकी संपादक एवं आवरण चित्र- संदीप कुमार सोनी, वारासिवनी

मुख्य कार्यालय- १५ नेहरू चौक, वारासिवनी, जिला बालाघाट (म.प्र.) ४८१३३१

मोबाईल- 9424765259, 9009465259

ईमेल- antrashabdshakti@gmail.com

वेबसाईट- www-antrashabdshakti

प्रथम संस्करण- 2020, **सपना परिहार**

मूल्य- 250.00 रूपये

मुद्रक- शैलू कम्प्युटर्स, वारासिवनी

THE BOOK WRITTEN BY SAPNA PARIHAR

वैधानिक चेतावनीः- इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकहृपी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम में अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरूत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई है। अतः प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु लेखक जिम्मेदार है। प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र, भाषाशैली एवं स्थान सभी लेखक की कल्पना है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अपनी बात

सर्वप्रथम माँ सरस्वती के चरणों में अपने श्रद्धा सुमन अर्पित कर रही हूँ। आज के इस पावन पुनीत अवसर पर जब मन में एक विचारधारा जन्म ले रही है कि वर्षो से साहित्य साधना द्वारा लेखनी ने जिन रचनाओं को जन्म दिया है, उन्हें अज्ञातवास से निकाल कर साहित्य जगत के उस धरातल पर लाना चाहिये, जहाँ साहित्य प्रेमी उनकी विवेचना कर गुण-दोष एवं उपयोगिता पर खुले मन से चर्चा कर सकें। बाल्यकाल से ही हिन्दी साहित्य में मेरी अभिरूचि रही है। अन्तर्मन के किसी भी कोने से जब भावों की अभिव्यक्ति जन्म लेती थी एवं वह भाव कल्पना के पंखो पर आसीन हो जब उड़ान भरने लगते थे तब बरबस लेखनी उन्हें अंकित करने हेतु लालायित हो जाती थी। और वहीं ऐसे क्षण होते थे, जिनमें मैंने असंख्य रचनाओं को जन्म दिया। रचनायें लिखना मेरी हॉबी रही है एवं उन रचनाओं को लिखकर भूल जाना भी मेरी हॉबी रही है। मैंने कभी भी उन रचनाओं को व्यवस्थित कर प्रकाशित कराने का प्रयास नहीं किया। जब कभी साहित्यिक या सामाजिक कार्यक्रमों मेरी उपस्थिति दर्ज हुई एवं उद्‌बोधन के अवसर पर एकाध छन्द, गद्य या पद्य अपने उद्‌बोधन के बीच व्यक्त कर दिया, वही मेरी अपनी रचनाओं का दायरा रहा है। जब भी मैं अकेली रही, एवं विचारधाराओं ने भावो का जन्म दिया,तब-तब मेने लिखने का प्रयास किया है। देश की राजनैतिक एवं सामाजिक घटनाक्रमों के अवसर पर भी मेरी लेखनी विराम के दायरों में सिमटने को तैयार नहीं रही है। निष्पक्ष विचारधारा मेरी अपनी धरोहर रही है। यह भी कटु सत्य है कि जब पहली बार लेखनी भावो की अभिव्यक्ति को साकार रूप देने के लिए अवतरित होती है तो जो लिखा जाता है वही अपनी अभिव्यक्ति होती है, अपनी विचारधारा होती है। इन्हीं कल्पनाओं को साकार करना मेरी साहित्य साधना रही है।

लेखनी कभी किसी की मोहताज नहीं होती। यदि साहित्य में थोड़ी बहुत भी रूचि है एवं अपने मनोभावों को शब्दों के माध्यम से आप यदि अपनी

विचारधारा में ढाल सकते है तो इस क्षेत्र में आप प्रयास कर सकते है एवं साहित्य साधना के धरातल पर अपने वे प्रयास सार्थक भी हो सकते हैं। कसौटी केवल यह है कि आप अपनी कल्पनाओं की उड़ान में कहाँ तक जा सकते है, एवं उन कल्पनाओं को लेखनी के माध्यम से किस रूप तक साकार कर सकते है। मैंने कभी अपने को साहित्यकार, कवि अथवा लेखक नहीं माना है। इतना आत्मविश्वास मुझमें अवश्य है कि मैं किसी भी विषय पर अपनी विचारधारा को अपनी लेखनी के माध्यम से शब्दों में ढाल सकती हूँ। मैं केवल यह उन नई प्रतिभाओं के लिए कह रही हूँ जिसकी साहित्य में थोड़ी भी रूचि है एवं जो अपनी लेखन प्रतिभा को अधिक से अधिक निखारना चाहते है।

साहित्य मित्रों, मेरे कहने का तात्पर्य मात्र यह है कि यदि नई पीढ़ी की कोंपलों में जरा सी भी साहित्यिक अभिरूचि है तो उसे लेखन के क्षेत्र में आगे आना चाहिये। क्योंकि हमारे ही देश में हमारी मातृभाषा हिन्दी आज अपने अस्तित्व के लिए जिन झंझावातो में जूझ रही है, वह हम सब के लिए एक चुनौती है। हमारी अनेक साहित्यिक संस्थायें आज भी हिन्दी के वर्चस्व की लड़ाईयाँ लड़ रही है ऐसे में हमारा अकिंचन सहयोग भी उन संस्थाओं में नई ऊर्जा का संचार करेगा।

मैंने अपनी पुस्तक का नाम **"सप्तरंगी"** इसलिए रखा, क्योंकि इसमें इन्द्रधनुष के सात रंगो के समान सब रंग मौजूद है। खुशी, वात्सल्य, दुःख, प्रेरणा, समसामायिक विषय, जीवन के उतार-चढ़ाव, परिस्थितियाँ, प्रेम, सब के रूप कविताओं में पिरोए हैं। कुछ माँ से शिकायत है, तो कहीं पिता के आदर्शो का उल्लेख है कहीं मित्रों की टोली के किस्से है, तो कही प्रेम की मिठास है। कहीं दुःख के किस्से है, तो कही सहानुभूति के दो शब्द है। इन सब भावो से मिलकर मैंने अपनी पुस्तक को नाम दिया है- **"सप्तरंगी"**।

मेरा यह मानना है कि हर व्यक्ति के अंदर एक कवि, साहित्यकार छुपा होता है, जो उसे अपने मन की बात कहने को प्रेरित करता है, चाहे वह शब्दों के माध्यम से हो या कविताओं के माध्यम से।

मेरी पुस्तक में मैंने नारी के हर रूप को अपनी रचनाओं, के माध्यम से लिखने का प्रयास किया है। वो नारी बेटी, माँ, सखी, प्रेयसी, पत्नी है उसके अपनी-अपने भाव है, उसे ही अपने भावो से कविता के माध्यम से लिखने की कोशिश की है।

मेरा न तो किसी से कोई द्वन्द हैं और ना ही कोई प्रतिस्पर्धा। और ना ही किसी साहित्य सम्मान पाने की लालसा। मेरा बस यही प्रयास रहता है कि मैं अपनी रचनाओं के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति लोगो तक पहूँचाऊ। जब लोग उन्हें पढ़ते है, और मुझे सराहना मिलती है, उस अनुभूति को केवल शब्दों में प्रदर्शित नहीं किया जा सकता।

आशा करती हूँ कि मेरा ये प्रयास सार्थक होगा और आप सभी को मेरी पुस्तक के हर रंग पसंद आएँगे।

आप सभी की शुभाशीष की शुभेच्छु ..

आपकी

श्रीमती सपना परिहार

अनुक्रमणिका

1.	गणेश वंदना	9
2.	नहीं	10
3.	बुढापा	11
4.	पथिक	12
5.	अमर बेल सी बढ़ती बेटी	13
6.	चादर	14
7.	हृदय हुआ वासंती	15
8.	पुरूष का प्रेम	16
9.	रिश्ता	17
10.	मायका	18
11.	जमीन	19
12.	इन्द्रधनुष	20
13.	खुशबू	21
14.	शब्द	22
15.	पिता	23
16.	मैं गजल लिखती हूँ	24
17.	बारिश	25
18.	रविवार	26
19.	प्रेम	27
20.	मेरी राखी	28
21.	मानस पुत्र	29
22.	नारी देह	30
23.	चाँद चाहिए	31
24.	मौसम	32
25.	मैं भारत की नारी हूँ	33
26.	याद आती हैं	34
27.	बसंत	35
28.	वो स्त्री	36
29.	शिक्षक का जीवन	37
30.	मै नारी हूँ	38
31.	पढ़ाव	39

32.	यादें	40
33.	माँ	41
34.	बरगद	42
35.	मेघ तुम धीरे बरसना	43
36.	शब्द	44
37.	विरह-वेदना	45
38.	वृक्षारोपण (व्यंग)	46
39.	लालसा (व्यंग)	47
40.	सुनो गुलाब	48
41.	सुनो बाबुल	49
42.	गीत	50
43.	पीहर का वो कमरा	51
44.	दीप तुम जगमगाते रहना	52
45.	रावण	53
46.	माँ तुम बहुत याद आती हो	54
47.	सुकून का कोना	55
48.	प्रियतम	56
49.	माँ	57
50.	तब बसंत होता है	58
51.	प्रेम दिवस (व्यंग)	59
52.	वेलेन्टाईन नहीं था	60
53.	प्रेम-दिवस	61
54.	मेरे घर अब गौरैया नहीं आती	62
55.	हास्य कविता	63
56.	बुजुर्ग	64
57.	मेरी माँ की दीवाली	65
58.	मौसम	66
59.	कविता	67
60.	शब्द	68
61.	गजल	69
62.	चरित्रहीन स्त्री	70
63.	कुछ रिश्तों के नाम नहीं होते	71
64.	गजल	72

65.	प्रेमपाती	73
66.	वनवास	74
67.	बागी	75
68.	औरते भी अजीब होती हैं	76
69.	बसंत हो गया	77
70.	गजल	78
71.	गजल	79
72.	गजल	80
73.	गुलाब	81
74.	बचपन वाली होली	82
75.	गजल	83
76.	स्त्री तूम पीड़ा में हो	84
77.	बेटी	85
78.	सर्मपण	86
79.	गजल – जिन्दगी	87
80.	लड़कियाँ	88
81.	जिन्दगी	89
82.	गज़ल	90
83.	कविता – शराबी	91
84.	कविता – खामोशी	92
85.	गौरेया	93
86.	कविता	94
87.	इल्तजा	95
88.	स्त्री (कविता)	96

गणेश वंदना

भाद्र पक्ष की चतुर्थी जन्म हुआ गजराज
रंग-गुलाल उड़ रहा
और बज रहा है साज।
प्रथम पूज्य को शीश झुकाऊ
गौरी पुत्र गणेश
भालचंद्र है जिनके शीश पर
पिता है तुम्हारे महेश।
एक सौ आठ है नाम तुम्हारे
तुम उनसे सुशोभित हो
मूसक वाहन है तुम्हारी सवारी
तुम सबके मन मोहित हो।
कार्तिकेय के भ्राता अनुज
रिद्धी-सिद्धी संग विराजत हो
शुभ-लाभ के बिना अधूरे
पिता उनके कहावत हो।
हर वर्ष में ग्यारह दिवस तुम
हम सबके घर में आते हो
अगले बरस फिर आने का वादा
तुम करके चले जाते हो।
हर शुभ मंगल कार्य में
तुम्हे ही पूजा जाता है
जीवन में कुछ भी संकट हो
इस जिव्हा पर नाम तुम्हारा ही आता है।

नहीं

चेहरे से उसकी उदासी कभी जाती नहीं,
उन नन्हें फरिश्तों के होठों पर कभी हंसी आती नहीं।

दिन-भर पेट भरने की तलाश में भटकते हैं वो,
कभी पूरा तो कभी आधा पेट वो भर पाते नहीं।

कौन हिन्दु कौन मुस्लिम, कौन किस धर्म का,
सबके हाथो की रोटी की वो पहचान पाते नहीं।

महलों का सुख तो शायद कभी नसीब न हो उन्हें,
झोपड़ी के सुख भी उन्हें मिल पाते नहीं।

खाना बदोशो के जैसी जिन्दगी होती है उनकी,
फिर भी इन मासुमों की जिन्दगी कभी रूकती नहीं।

हर हाल में उनको खुश देखती हूँ तो सुकून मिलता है,
क्यों इस समाज को इन मासुमों की याद आती नहीं।

खुले आसमान के नीचे बेखबर वो सोते है बिन्दास,
और हम इंसानो को मखमल पर भी नींद आती नहीं।

बुढ़ापा

सुनो, अब झाँकने लगी है
आपके सर की सफेदी
और, दिखने लगा है,
आपके चेहरे पर 'बुढ़ापा'।
और चिन्ताओं की रेखाएँ
जो हमारी जिम्मेंदारियों को,
और हमारी इच्छाओं को
पूरा करते-करते,
और गहरी हो रही हैं।
पर, तुम्हारे चेहरे पर अब भी
वो ही खुशी का भाव है
जो बरसो पहले हुआ करता था।
तुम आज भी नहीं बदले।
वैसे ही,
अपनी जरूरतों को परे रखकर,
हम सबकी खुशी को पुरा करते,
और हमें हर तरह से सुकून देते।
बिना अपने सुकून की परवाह किए।
सुनो, तुम थक रहे हो।
पर, अपनी थकान तुम दिखाना नहीं चाहते,
और, नहीं चाहते कि मैं देखू,
तुम्हारे वो सब अहसास, जो दबा रखे हैं,
अपने सीने में।
सिर्फ हम सबकी खुशी के लिए।

पथिक

तुम्हारी राह आसान नहीं हैं,
और नाही आसान है
वो रास्ते...
जिन पर तुम्हें चलना है निन्तर!!
जब तक तुम
अपनी मंजिल नहीं पा लेते!!
''पथिक''
तुम घबराना नहीं,
तुम डर जाना नहीं!
क्योंकि...
तुम्हारी डगर बहुत कठिन हैं!
और सड़क पथरीली!
जिस पर चलके,
तुम्हारे पॉव में छाले भी होगें,
कभी अंधेरे तो कभी उजाले भी होगें!
पर!!
तुम विश्वास के साथ,
बढ़ना निरन्तर,
अपनी मंजिल पर!
जहाँ तुम पहुँचना चाहते हो!
तुम सून रहे हो न,
''पथिक''

अमर बेल सी बढ़ती बेटी

जैसे-जैसे समय आगे बढ़ रहा है,
और तूम भी बढ़ रही हो
अमरबेल की तरह।
विशाल दूर तक फैली हुई
अपनी हंसी लेकर, प्यार देकर
और खनकती हंसी से सजाकर
तुम निरन्तर बढ़ रही हो।
अपने सपने, अपनी महत्वकांक्षाएँ,
और ढेर सारे सवालों को मन में लिए।
पर, बिटिया एक बात हमेशा याद रखना।
आगे बढने जरूर जाना
पर अपने कदम तुम,
उस अमर बेल की तरह, जमीन और जड़ो में रखना।
क्योंकि, जब कभी तुम पीछे मुड़के देखो तो,
तुम्हारी जड़े, तुम्हारे अपने
तुम्हें सामने जरूर दिखाई दें।
शुभकामनाएँ बहुत है तुम्हारे लिए,
आर्शीवाद के साथ।
बिटिया, अमर बेल की तरह बढ़ती जाओ तुम।
कामयाबी और अपनी खुशीयों के लिए,
बिना किसी बाधा के।
'अमरबेल सी बढ़ती बेटी।'

चादर

गुजरते वक्त के साथ
बड़ते सपने, बड़ती जरूरते
और बढ़ती इच्छाएँ।
जो, निरन्तर बड़ रही है
और, पैर पसारती जा रही है
जीवन में।
उधार के सपने, आँखो में लिए
हैसियत से ज्यादा।
पर, बिना इस बात की परवाह किए बिना
कि, पैर और सपने
अपनी 'चादर' के
भीतर ही अच्छे लगते है।
क्योंकि?
जब पाँव चादर के बाहर
निकल जाते है तो,
चादर तो सिमट जाती है।
पर पाँव, वापस 'चादर' के अन्दर
सिमट नहीं पाते।
भले ही वो चादर आपको वो सबन दे।
कि, जो चादर के अन्दर है
वो केवल आपका है।
और,
वो सब आपसे कोई नहीं ले सकता!

हृदय हुआ वासंती

खेलो में खिली है सरसों
और बागो में खिले है पीले फूल।
वसंत का हुआ आगमन
स्वागत करे अर्पित कर फूल।
वीणा वादिनी की स्तुति करे,
और झुकाओ चरणों में शीश,
विद्या, बुद्धि और ज्ञान का
हमें मिले आशीष।
सब मिलकर स्वागत करें।
दोनो हाँथ जोड़
वसंत और शारदे देवी का,
आशीष पड़े चहुँ ओर।
वन-उपवन खिल उठा,
है वासंती बहार से,
माँ का मंदिर सजा हुआ हैं,
पीले फूलो के हार से।
मन वासंती, तन वासंती,
और वस्त्र हुए वासंती
आगमन के वसंत के
हृदय भी हुआ वासंती
हृदय हुआ वासंती!!

पुरूष का प्रेम

पुरूष तलाशता है,
एक स्त्री में, अपना देह सुख।
और देता है एक नई परिभाषा प्रेम की।
क्या प्रेम ऐसा होता है?
जे रोंदता है, एक स्त्री के अरमान,
तोड़ता है देह।
और एक स्त्री सहती है पीड़ा।
जो पुरूष के प्रेम की है।
जिसका मन से कोई लगाव नहीं है।
केवल एक पुरूष के
प्रेम की अभिव्यक्ति है।
जिसे पुरूष ने प्रेम की संज्ञा दी है,
पर, एक स्त्री तरसती हैं,
उस प्रेम की अनुभूति के लिए,
जो देह सुख से परे,
सिर्फ प्रेम से परिपुर्ण, स्पर्श के साथ।
उसे अपने आलिंगन में ले।
और ऐसा सुख दे, जो तन ही नहीं अपितु
मन के भीतर तक,
प्रेम की अनुभूति जगा सके।
बिना अपनी देह सूख की कॉंमना के।
एक स्त्राी को वो प्रेम दे, जो वह चाहती ळे एक पुरूष से।
जो उसके तन-मन को तृप्त कर सके।
और, उसके जीवन को देह सुख से परे,
अपने प्रेम से भर सकें!

रिश्ता

बढ़ती हुई उम्र के साथ
बढ़ रहा है हमारा रिश्ता।
और हो रहा है प्रगाण,
और उसमें आ रही है परिपक्वता, समझदारी
और, एक दुसरे को माफ करने की क्षमता।
जो, शायद समय के साथ ही आई है।
गहराई में भी बढ़ रही है रिश्ते में।
अपना सब कुछ देने में, तुम्हारा सब कुछ पाने में।
मुझे, हमारे रिश्ते में।
शायद, मैं आज भी तुम्हें
मन से नहीं अपना पाई।
'रिश्ता' निभाया तो है पूरी ईमानदारी से,
पर, मन से मैं तुम्हें आज भी नहीं
अपनापाई।
मुझे माफ करना, मेरी इस गलती के लिए।
क्योंकि प्रेम में बंधन नहीं होता।
और मैं किसी भी जोर-जबरजस्ती के बंधन में
नहीं बंधना चाहती। उड़ना चाहती हूँ खुले आसमान में,
उन्मुक्त पंछियो की तरह, साँस लेना चाहती हूँ,
खुलकर।
पर ये सब मेरी इच्छाएँ हैं, जो आज भी दफन है,
दिल के किसी कौन मे, जो अपने रिश्ते को
निभाने में, मैने खुद ही अपने हाथों से
उन्हें दफन कर दी।
केवल, हमारे इस 'रिश्ते' की खातिर!

मायका

क्यों नहीं आती अब
चमक, चेहरे पर,
क्यों नहीं होती, मैं उतावली
मायके जाने के लिए?
क्यों बेमन से कदम रखती हूँ,
मैं बाबुल के आँगन में।
क्यों कदम रूक जाते है दहलीज पर आकर।
शायद इसलिए।
कि आज माँ नहीं है मेरी वहाँ,
जो इंतजार करती थी
अपने नवासे-नवासी का।
अपनी बेटी का।
जिनके लिए वो महीनों पहले से करती थी तैयारी।
छोड़कर सब काम-काज,
और लग जाती थी,
हमारे आने की स्वागत तैयारी में
तुम बिन माँ आज सब सूना है।
'मयका सिर्फ माँ' से है,
आज इस सच को जाना हैं।
आज तुम्हारी तरह कोई मुझे, महावर लगाकर
विदा नहीं करता,
मेरे वहाँ से आने में कोई नहीं रोता,
और कोई भी, उस दरवाजे से टकटकी नहीं लगाता।
जिससे तुम हम लोगो को ओझल होने तक
देखती रहती थी!
'माँ बहुत याद आती हो तुम'

जमीन

एक टुकड़ा जमीन के लिए,
क्यों इंसान।
भूल जाता है रिशते-नाते
और अपने सम्बन्ध।
जो बरसों पुराने जुडे हुए,
जिनसे उसकी एक पहचान बनी हुई थी।
सिर्फ;
थोड़ी सी जमीन की खातिर?
क्यों इतना स्वार्थ आ जाता
है मन में?
कि सबको परे रखकर,,
केवल अपने बारे में
सोच बना लेता हैं
अपने मन में।
क्यों? ये भूल जाता हैं वो,
ब्हुत कुछ खो रहा हैं;
प्यार, रिशते-नाते, ढेरों खुशियाँ!
सिर्फ एक जमीन के
टुकड़े की खातिर!

इन्द्रधनुष

बारिश के बाद जब
खुले आसमान में एक
बड़ा सा इन्द्रधनुष
देता है दिखाई,
सात रंगों से सजा!!
मन को आनन्दित करने वाला।
हर रंग को परिभाषित करता।
कभी प्रेम के रंगो से,
कभी शांति के रंगो से,
पर, मुझे तो;
इन्द्रधनुष के सभी रंग पसंद हैं!
जानते हो क्यों???
क्योंकि हर रंग मुझे,
तुम्हारे प्रेम के रंग में
डूबा हुआ दिखाई देता हैं!
और;
ये सप्तरंग, मेरे जीवन में
बहुत मायने रखते हैं!
ठीक वैसे ही,
जैसे तुम बहुत खास हो मेरे लिए।
'इन्द्रधनुष के रंगो की तरह'!

खुशबू

'सुनो'
मुझे रात की रानी का पेड़
बहुत पसंद हैं।
और पसंद हैं, महक उसकी।
जानते हो क्यों??
क्योंकि उसकी महक, फैल जाती है चारो ओर!
और, महका देती है सबको अपनी खुशबू से!!
सब डूब जाते है उसकी महक में,
एक मदहोशी सी होती है, खुशबू में उसकी,
जिसमें सब डूब जाना चाहते हैं!
पर, मैं नहीं चाहती कि, तुम्हारी खुशबू
कोई और चुरा ले;
हाँ, मै स्वार्थी हूँ!!
भले ही तुम रात की रानी की
महक बनो,
पर, उसकी महक सिर्फ और सिर्फ
मुझे ही महसूस होनी चाहिए!
क्योंकि;
तुम अहसास हो,
जो सिर्फ महसूस किया जाता है
रूह में,
'केवल रात की रानी की महक जैसा'!

शब्द

मन की अभिव्यक्ति है शब्द,
तन की अनुभूति है शब्द।

बोली की मिठास है शब्द,
आपस में कभी खटास है शब्द।

जीवन में प्रेम ही प्रेम हैं शब्द,
कभी झूठे तो कभी सच्चे नेह है शब्द।

गीता के उपदेश है शब्द,
सीता के संदेश है शब्द।

मीरा, की भक्ति है शब्द,
कान्हा की शक्ति है शब्द।

तीर से चुभते हैं शब्द,
कानों में जब गूँजते है शब्द।

जीवन के हर भाव हैं शब्द,
कभी धूपतो कभी छाँव है शब्द।

कभी अपने तो कभी पराये है शब्द,
तो कभी लोगो ने गले से लगाएँ है शब्द।

कभी आँख का 'सपना' है शब्द,
हर दिल का कोई अपना है शब्द।

पिता

बचपन से आज तक आपने हमें कोई कमी न होने दी,
पापा आपने हमारी सारी जरूरतों में कभी कोई कमी न हाने दी।

मुझे आज भी आपके वो छाले याद है,
जिन्हें आपने कभी हम-सबको दिखाने की कोशिश नहीं की।

समाज में आपने जो मुकान पाया, अपने होसलो के दम पर,
मुझे गर्व है कि आपने कभी अपने अहम की नुमाईश नहीं की।

बुलंदियो को छूने के बाद भी,
अपनी जड़ो को जमीन से नहीं हटाया कभी,
अपनो की तो क्या कहे, कभी गैरो के लिए,
प्रेम की भी कभी कमी नहीं की।

खुद आगे बढ़े और दूसरो को भी आगे बढ़ाया,
समाज मे सबको सम्मान से जीना सिखाया।

थकते रहे उम्र भर, पर उफ तक नहीं की,
सहते रहे कष्ट और पीड़ा, पर मुँह से उफ़ तक न की।

मैं गजल लिखती हूँ

आँखो में आँसुओं का समंदर हो तो,
मैं गजल लिखती हूँ,
दिल में दर्द का सैलाब हो उमड़ा तो,
मैं गजल लिखती हूँ।
वक्त और हालात से इंसान टूट जाता है अक्सर,
हालातों से परेशान होती हूँ तो,
मैं गजल लिखती हूँ।
तमाम उम्र ज़जबातो से मेरे, लोगो को खेलते देखा है, 'सपना'
जब मेरे जजबातों की कद्र नहीं होती तो,
मैं गजल लिखती हूँ।
इंसानियत, वफ़ा और रिशते, सब आज बैमानी से लगते हैं, मुझे
इन सब में धोखे जब मिलते है मुझे तो,
मैं गजल लिखती हूँ।
क्यों आज भी मैं इंसानो की परख नहीं कर पाती हूँ दोस्तो,
जब कोई अपना दगा देता है मुझे तो,
मैं गजल लिखती हूँ।
उम्र के इस पढ़ाव ने बहुत कुछ सिखा दिया है मुझे,
लोगो की चालाकियों से होती हूँ आहत तो,
मैं गजल लिखती हूँ।
हजारों अपनें है दुनिया में पर कोई सच्चा नहीं है,
इस भीड़ में, मैं आज भी तन्हाँ होती हूँ तो,
मैं गजल लिखती हूँ।

बारिश

सुनो!!
बहुत दिन हों गये
बारिश में भीगे हुए,
तुम्हारे साथ!!!
वो नीम के पेड़ तले
भीगने से बचते हुए,...
अफसोस!!
जिन्दगी की आपा-धापी में
अपना वक्त कब,
घड़ी की सुईयों की तरह,
आगे बढ़ता जा रहा हैं,...
और हम वो लम्हें पीछे छोड़ते जा रहे है,,
जिन्हें हमें,
सिर्फ अपने लिए सहेजना था!!!
चलो न...
आज फिर थोडा समय
निकाले अपने लिए,...
उस बारिश में भीगने के लिए,
जो मुझे बहुत पसंद हैं!

रविवार

सबके हिस्से में क्यों काम नहीं आते,
मेरे हिस्से में क्यों रविवार नहीं आते।
परिवार की सेवा और बच्चो का ध्यान,
दिन भर करू, मैं बस काम ही काम।
सब अपने कामों का वेतन है पाते,
और हम अपने कामो का कुछ न पाते।
सब अपने अवकाश में आराम है पाते,
मेरे हिस्से में क्यों रविवार नहीं आते।
रविवार को सबकी फरमाईश करू पूरी,
अपने ही घर मे दिन भर करू मजदूरी।
मेरे सभी काम किसी को नजर क्यों नहीं आते,
मेरे हिस्से में क्यों रविवार नहीं आते।
मैं भी चाहूँ थोड़ा आराम,
एक दिन न करू कुछ भी काम।
पर, मेरे काम कभी खत्म नहीं हो पाते,
मेरे हिस्से में क्यों रविवार नहीं आते।
देर तक सोऊ मैं, मेरा मन भी चाहे,
कोई अपने हाँथो से मुझे भी चाय पिलाए।
मेरे सारे अरमान मन में दबके ही रह जाते,
मेरे हिस्से में क्यों रविवार नहीं आते।

प्रेम

हाँ...
मुझे प्रेम है तुमसे!
और शायद तुम्हें भी...
पर, मेरे प्रेम और तुम्हारे
प्रेम की परिभाषा है अलग-अलग!
बंधन पसंद हैं!!
तुम किसी परिधि में बंधना नहीं चाहते...
और मैं...
तुम्हारी परिधि में ही रहना चाहती हूँ!!
हम दोनो के प्रेम में
असमानता हैं!!!
मानती हूँ मैं!
पर, तसल्ली इस बात की हमेशा रहेगी...
कि प्रेम हम दोंनो में रहेगा हमेशा!!
प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में!
प्रेम हमेशा रहेगा,,
तन, मन, वचन के साथ
हमेशा, हमेशा!

मेरी राखी

मेरी राखी आज भी
फिर उस लिफाफे में बंद हो जाती हैं।
जो हर साल सिर्फ इसलिए
खुलता है क्योंकि...
तुम्हारे नाम की राखी,
मैं किसी और को नहीं
बांध सकती भाई!!!
क्योंकि...
मुझे किसी में भी तुम नजर नहीं आते!
और ना ही... तुम्हारी छवि,
किसी में दिखाई देती हैं।
हाँ...
मैं हर त्यौहार पर होती हूँ उदास!
पता है क्यों??
क्योंकि जब अपने पास न हो,
तो कैसा त्यौहार!
और कैसी खुशी??
तुम्हारी कमी बहुत खलती है भाई!!
जब भी मैं अपनी राखी को देखती हूँ,,
जो कभी आपकी,
कलाई की शोभा बढ़ाती थी!

मानस पुत्र

है प्रकृति के मानस पूत्र,
क्यों घोल रहे हो पर्यावरण में विष!
धरती हो रही है बंजर,
धुल रहा है उसमें जल रूपी विष।
अपने स्वार्थ में तुम अंधे न बनो,
प्रकृति को बचाने में सहयोग का माध्यम तो बनो,
रूप, रस, गंध और सुंदरता
जिस पर गर्व है तुम्हे,
मत भुलो कि ये सब,
प्रकृति ने ही दिया है तुम्हें।
वैभव-विलास की तुम्हें जो आदत पड़ गई है,
प्रकृति को उजाड़ कर तुम्हारी जो हवेली सज गई हैं।
करके उसको आहत
तुम कभी सुख न पाओगे,
सॉस लेने के लिए भी तुम तरस जाओगे!
अभी भी समय है
अपनी धरोहर को सहेज लो,!
'है प्रकृति के मानसपूत्र'
प्रकृति बाँहे फैलाकर खड़ी हैं,
उसे अपने आँचल में सहेल लो!

नारी देह

नारी देह...
करती है आकर्षित
पुरूषों को अपनी ओर!
सुडोल अंग, कामिनी काया
और मोहक मुस्कान।
जो मिला है उसे, आशीर्वाद स्वरूप ईश्वर से।
पर!! आज नारी देह
बन गई है भोग की वस्तु!
पुरूष का प्रेम केवल देह सुख
तक ही क्यों सीमित है??
क्या?
सुख केवल नारी देह को कष्ट
देकर पाया जा सकता है।
नहीं!!!
नारी देह में समाहित है प्रेम, समर्पण, मातृत्व
सुख से भरा आंलिगन!
जिसे नहीं देखता वह पुरूष,
जो केवल नारी में तलाशता
है अपना देह सुख!
जिससे हर बार की तरह,
टूट जाती है,
एक पुरूष के समक्ष,
एक 'नारी की देह'!

चाँद चाहिए

हाँ...
मुझे भी चाँद चाहिए
जिसे मैं बचपन में
मांगती थी जिद करके!
और...
माँ भी मुझे बहलाने की
कोशिश करती।
पर मैं भी कहाँ सुनती थी!
'माँ मुझे चाँद चाहिए'
माँ कहती तुम ही हो चाँद
मेरे घर की,
जिसमें कोई दाग नहीं हैं!
मेरी लाड़ो,...
तब उस शब्द के मायने
समझे बिना मैं
खुश हो जाती थी!
माँ...
तुम सच कहती थी,
बच्चे चाँद होते हैं!
उनमे चाँद की तरह
दाग नहीं होता!
और वो चाँद से भी
सुन्दर होते हैं!!!

मौसम

सुनो...
मुझे हर वो मौसम पसंद है,
जिसमें तुम मेरे साथ होते हो।
गरमी में एक ठंडी हवा
का अहसास कराते हो।
तो बारिश में मुझे भीगने से बचाते हो।
तुम्हारी गर्माहट मुझे
सर्दी का आभास नहीं होने देती।
पर तुम बिन, ...
ये मौसम उन बेजान वस्तु की तरह है,
उनमें रंग-रूप तो है
पर प्राण नहीं हैं।
तुम्हारा साथ हर मौसम में
खुशी देता है मुझे।
कभी बाँहो में भरकर,
कभी प्यार से सहलाकर!
और,
कभी अपनी गर्माहट देकर।
एक बात कहूँ,,
तुम हो तो हर मौसम खुशनुमा हैं,
और तुम नहीं तो,
जिन्दगी बेमौसम है!!!

मैं भारत की नारी हूँ

मैं विद्या हूँ, मैं जननी हूँ,
हर रूप में, मैं बन्दनी हूँ।
शिवा हूँ मैं, मैं शक्ती हूँ,
देवो की मैं, भक्ति हूँ।
मैं दूर्गा हूँ, मैं काली हूँ,
मैं भारत की नारी हूँ।
प्रेम, समर्पण भाव है मेरा
सृष्टि की रचना काम है मेरा,
हर रूप में, मैं ढ़ल जाती हूँ,
मैं भारत की नारी हूँ।
शकुन्तला का प्रेम हूँ मैं,
अनसुईया का मातृत्व हूँ में,
दुर्गावती सा तेज है मेरा।
पन्नाधाय का त्याग हूँ मैं।
मैं भविष्य की जननी हूँ,
मैं भारत की नारी हूँ।
दादी, नानी, चाची, मौसी,
कई अनगिनत रूप है मेरे
बेटी, बहूँ, प्रेयसी, पत्नी
कई ऐसे स्वरूप है मेरे।
सबको सुख देकर,
मैं खुश हो जाती हूँ,
मैं बड़े अभिमान से कहती,
मैं भारत की नारी हूँ!!!

याद आती हैं

परदेश से घर आने की,
माँ के हाँथ के खाने की,
वो हर बात पर रूठ जाने की,
सच बहुत याद आती है!
झूठ-मूठ सबको सताने की,
हर बात पर बहाने बनाने की,
अपनी शैतानियों से पूरे घर को सिर पर उठाने की,
सच बहुत याद आती हैं!
दुल्हन बनके बैठ जाने की,
घूँघट में खुद को छुपाने की,
हँसी-हँसी में शरमाने की,
सच बहुत याद आती है।
परीक्षा हॉल मे नाखून चबाने की,
केंटीन में समोसे खाने की,
दोस्तों पर रोंब जमाने की,
सच बहुत याद आती हैं।
पहले प्यार के अहसास की,
कुछ अपने जज़बात की,
बीते हुए उन हसीन लम्हात की,
सच बहुत याद आती हैं।
अपनो के साथ छोड़ के जाने की,
आँखो से आंसुओं के बहते जाने की,
माँ के सीने से फिर से लग जाने की,
सच, बहुत याद आती हैं!

बसंत

फिर आज बसंत आया है,
मन में मधुमास छाया है
प्रकृति ने बासंती छटा बिखरे है,
चहुँ ओर आनन्द छाया है।
पीले पुष्प, पीला अम्बर,
धरती पीली, पीले पकवान
सभी देव मीलकर कर रहे
माँ वीणा वादिनी का गुणगान।
कामदेव भी चला रहे
फूलो के तीर-कमान
मन प्रफुल्लित हो रहा,
आकाश ने बढ़ाया
धरती का मान।
नई कोपाले वृक्षों पर
प्रफुल्लित हो रही,
नव-पुष्पों की आई बहार हैं,
बासंती ऋतु में चल रही
ठण्डी-ठण्डी बयार है।
'सपना' करे तेरा अभिवादन
और चरणो में ध्यान,
मिले समाज में हमें,
तेरे आशीष से,
मान और सम्मान।

वो स्त्री

भोर होते ही
अपने काम पर निकलती
पत्थर तोड़ती, तगारी उठाती,
मजदूरी करती, वो स्त्री!
दिन-भर मेहनत करके
थोड़ा सा कमाती,
फिर भी संतुष्ट होती, वो स्त्री!
उसका कार्य पुरूष के
समान होते हुए भी,
अपने आप को पुरूष से कम पाती,
वो स्त्री!
सड़कों के किनारो पर,
रेलवे स्टेशन के कोनो पर
बिना मौसम की परवाह किए
अपने बच्चे को सुलाती, वो स्त्री!
कड़ी धूप मे झुलसती,
बारिश में भीगती
ठण्ड में ठिठुरती,
थोड़ा सा भी चैन से न बैठती, वो स्त्री!
साँझ-ढले घर को आती
फिर घर के काम में लग जाती,
परिवार को भेजन कराती जो बचता
उससे अपनी भूख मिटाती, वो स्त्री!

शिक्षक का जीवन

सच! नहीं है आसान...
एक शिक्षक का जीवन!
अपना स्वस्व त्याग कर
विद्यार्थियों के विकास के लिए
बनना पड़ता है, कर्मशील,
क्रियाशील, विनयशील!
शांत करनी पड़ती है,
बच्चो की जिज्ञासाएँ,
अनसुलझे प्रश्न और ढेरो उदंडताएँ
सच! नहीं है आसान...
एक शिक्षक को अपने आप को
समाज में स्थापित करना, योग्य पद पर!
शिक्षक एक नीव है,
जिस पर कई मंजिला ईमारत का निर्माण होता हैं।
पर, समाज ईमारत के नीचे की नीवं को अनदेखा करता है।
सच! एक शिक्षक आज भी वही खड़ा हैं,
जहॉ से उसने अपने शिक्षा के जीवन का प्रारम्भ किया था!
सच!
नहीं है आसान,.. एक शिक्षक का जीवन
वो सबको देता है ज्ञान का प्रकाश,
और जीवन में आगे बढ़ने का बनता है माध्यम।
बिना किसी स्वार्थ के
सच नहीं है आसान,... एक शिक्षक का जीवन!

मै नारी हूँ

मैं नारी हूँ,
नहीं है आसान मेरा जीवन,
बचपन से ही बहुत कुछ सिखा दिया जाता है।
और डाल दी जाती है छोटी सी उम्र में,
ढेर सारी जिम्मैदारियाँ!
परिवार, समाज, रीति-रिवाज, नियम-कानून
सबकी कसौटी पर खरे उतरने की परीक्षा,
देते-देते कब मेरी उम्र बीत जाती है,,,,
पता नहीं चलता!!!
फिर भी,,
मैं उफ्फ़ तक नहीं करती!
खुद से जुड़ा हर रिशता निभाती हूँ,
माँ, बहन, बेटी, प्रेयसी, पत्नी के रूप में।
मैं नारी हूँ,,,
जो समाज में पुरूष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर,
गाड़ी के दोनो पहियों की तरह,
अपने परिवार को चलाने में करती है सहायता
बिना किसी स्वार्थ के!!!!
खुशी, खुशी!!
मैं तो अपना सब दुःख दर्द भूल जाती हूँ,
थोड़ा सा प्रेम और सहानुभूति पाकर!!!
ईश्वर की बनाई हुई, मैं वो पूजनीय कृति हूँ,
जिसे देवता भी नमन करते है!!
मैं नारी हूँ।

पढ़ाव

सुनो...
अब हम दोनों के
चेहरे से बुढ़ापे की निशानियाँ उभरने लगी है।
तुम्हारी सफेदी और मेरा चश्मा,
हमारी खूबसूरती को जिम्मेदारियों की
दहलीज पर ला रहा है!
सच! सही जीवन का मूल है!
कल हम जहाँ थे,
आज वहाँ हमारे बच्चे खड़े है,
जवानी की दहलीज पर!
उनको देख के याद आता है न हमारा भी जमाना!
प्रेम और माधुर्य से भरा हुआ,
अपनी ही जिन्दादिली में जीता हुआ!
हमारा प्रेम उम्र के साथ बढ़ रहा है,
और साथ बढ़ रही है हमारी जिम्मैदारियाँ!
सच! हम वाकई में उस मौड़ पर है,
जहाँ से हमें सिर्फ अपने बारे में नहीं,
बल्कि हमारी उन तम्माम उम्मीदों के
बारे में सोचना है, जो हमसे जुड़ गई हैं।
बहुत सारी उम्मीदों के साथ!
हाँ... यही सच हैं!
पर मुझे यकीन है हम दोनों अपने प्रेम से
सभी की जिम्मेदारियों को पूरा करेंगे!
और कुछ पल,,, हम भी साथ बिताएँगे,... उम्र के इस पढ़ाव से!

यादें

बहुत कुछ अपना मैं पीछे आई हूँ,
बाबुल के आँगन से कुछ पुरानी यादें साथ लाई हूँ।

छोड़ बचपन और अल्हड़ सी मस्तियाँ,
अपने ऊपर ढेर सारी जिम्मेदारियाँ साथ लाई हूँ।

गुड्डे-गुड़ियों से घर सँवारा बहुत दिन,
संवारने पिया का घर मैं बाबुल का घर छोड़ आई हूँ।

सजा करते थे कभी इन आँखों में जो सपने,
उन सपनों को बहुत दूर कहीं छोड़ आई हूँ।

लाड़ो, गुड़िया, बिट्टो बुलाई जाती थी मैं,
बहू, पत्नी, भाभी, अब नए रिशते बनाने आई हूँ।

माँ की नसीहतें और पापा का मान-सम्मान ले साथ,
दोनो घरों का मान-सम्मान बढ़ाने आई हूँ।

माँ

आज फिर तेरी याद आई,
आज फिर दिल को हमने समझाया।
तू बहुत दूर गयी है हमसे 'माँ',
तेरी यादों से आज दिल भर आया।
जब कभी मायुसी ने घेरा मुझे,
तेरा साया हर वक्त मेरे साथ नजर आया।
सबको प्यार देने में कभी कमी नहीं करती माँ,
उसके प्यार में कभी फर्क नजर नहीं आया।
जिसने भी माँ की सेवा कर ली,
मानो वो चारे धाम तीरथ कर आया।
खुशनसीब है वो, जिनके पासा माँ की दुआ है,
और आँचल की है शीतल छाया।
आज फिर तेरी याद आई,
आज फिर दिल को हमनें समझाया।
'माँ'

बरगद

है बरगद,...
हर बार की तरह मैं
भी आई हूँ
पूजने तुम्हें!!
उन सुहागिनों की तरह!
जो रखती है व्रत और
करती है पुजन तुम्हारा!
अपने प्रिय की लम्बी आयु
और स्वास्थ्य के लिए!!!
और,,,,,
माँगती है वरदान,
अखण्ड़ सौभाग्य, उस महान
सावित्री के जैसा, जिसने
बचाए थे प्राण अपने पति के
उस यमराज से!!
और पाया अखण्ड़ सौभाग्यवती
होने का वरदान!
है वट,,,,
दो मुझे भी वरदान
सौभाग्यवती का आशीष!
है बरगद!!!

मेघ तुम धीरे बरसना

मेघ तुम धीरे बरसना!
किसी गरीब की झोपड़ी में
पानी न भर जाए,
उसके सर से कहीं छत न चली जाए,
उसका परिवार रात भर सो न पाए!
मेघ तुम धीरे बरसना!
ऐसे कई है, जो रहते है खुले आसमान तले,
नहीं है कोई आशियाना उनका,
सड़क का किनारा और खुला आसमान है घर उनका,
थोड़ी सी दया उन पर भी करना!
मेघ तुम धीरे बरसना!
तुम्हारा सैलाब कहीं बहा न ले जाए अरमान उनके,
कुछ छोटे-छोटे सामान उनके।
उनकी आँखो में तुम उदासी के अश्रु न भरना!
मेघ तुम धीरे बरसना!
अमीरो की तरह वैभव, विलास नहीं है पास उनके,
दो वक्त की रोटी और कुछ सपने है पास उनके,
उनके अरमानों को तुम थोड़ा तो समझना!
मेघ तुम धीरे बरसना!

शब्द

हाँ,,, होती हैं शब्दों
की भी मर्यादा!
वे बँधे होते है,
संस्कार से, व्यवहार से।
और होते है मर्यादित
सीमित शब्दो से!
होती है पहचान भी,
शब्दो की!
शब्दहीन मनुष्य, समाज
होता है उस मूक-बधिर की तरह,
जिसे समझाना पाना होता है
बेहद कष्टप्रद और दुःखदायी!
जिसकी पीड़ा समझ पाना है,
अत्यन्त जटिल!
शब्दों के आदान-प्रदान से
होता है विस्तार,
मित्रता का, प्रेम का, सौहार्द का!
मर्यादित शब्द, मीठे बोल,
बनाते है आपको विशेष!
अतः,.. शब्दो को समझ
करें सम्मान उन सभी लोगो का,,
जिन्हें शब्द प्रिय और
सम्मानीय है!!!

विरह-वेदना

खड़ी नवयौवना द्वार पे
प्रिय आगमन की आस,
झर-झर अश्रु बह रहे,
प्रियतम नहीं है पास
तन व्याकुल है
मन अधीर है,
और नयन है उदास,
प्रिय विरह मे कहीं टूट न जाए
जीवन की यह साँस!
करे प्रतीक्षा अपने प्रियवर की
कर सौलह श्रंगार
अब तो आ जाओ प्रियतम,
ये हृदय करे मनुहार!
घर-आँगन में चौक पुराए
हर कोना दीपो से जगमगाए,
निशा प्रहर भी बीत गई हैं,
ऊषा-काल में भी तुम नहीं आए।
अब भी है इन नयनों में
प्रिय दरस की आस,
झर-झर अश्रु बह रहे,
प्रियतम नहीं है पास!

वृक्षारोपण (व्यंग)

सात दिनों में वन महोत्सव कुछ इस तरह मनाया गया,
वृक्षारोपण के लिए नेताओ को बुलाया गया।

मीड़िया के बीच पौधा लगाते हुए तस्वीरें खिंचवाई गई,
पर्यावरण को बचाने पर कुछ बाते बताई गई।

पौधा मन नहीं मन मुस्कुरा रहा था,
अपनी बेबसी को दर्शा रहा था।

अब साल भर मेरी कोई सुध लेने नहीं आएगा,
अब कोई नेता कल मुझे पानी देने नहीं आएगा।

अपने नाम की तख्ती मेरे सामने लगा जाएगा,
एक साल बाद फिर नया वृक्षारोपण करने आएंगा।

लालसा (व्यंग)

कुर्सी और सत्ता की लालसा सिर्फ नेताओं में ही होती,
टाँग हर क्षेत्र में खीचने वाले बैठे है।

कहीं मुझसे आगे कोई न निकल जाए,
कैसे उसको पीछे खींचू, ये घात लगाए बैठ हैं।

लंगूर के हाथ में आज अंगूर थमा रखे हैं,
हंस के हाथ कुछ नहीं, कौए मोती खाके बैठे हैं।

जिनको तनिक भी ज्ञान नहीं है, वो ऊँचे पद आसीन है,
डिग्रियाँ वाले उनके नीचे, चपरासी बनके बैठे हैं।

शिक्षा भी व्यापार हो गई,
सबकी कीमत तय हो गई
कॉपी-किताबो की क्या बात करें हम
कपड़े और जूतों पर भी कमीशन खाके बैठे हैं।

न सच कहने की हिम्मत है, न सच को सुनना चाहते,
अंधेर नगरी और चोपटराजा के जैसे खुद को बना के बैठे हैं।

प्रजातंत्र और लोकतंत्र में सबको अभिव्यक्ति का अधिकार है,
जिसकी लाठी उसकी भैंस है, वही आज दमदार हैं।

जनता किसको अपनी यहाँ व्यथा सुनाए,
ऊपर से नीचे तक सब धृतराष्ट बनके बैठे हैं।

सुनो गुलाब

सुनो गुलाब,,,
तुम महकते हो तो
सारी कायनात खुशनुमा हो जाती है।
तुम्हारी महक सभी के दिलो को छू जाती हैं!
न जाने कौन सी कशिश है तुझमें,
जीवन की हर शह तुझ पर
फिदा हो जाती है।
ईश्वर की कृपा कहूँ तुम्हें
या रब की मेहरबानी!
अपनी खूबसूरती को बयाँ
करते हो तुम अपनी जुबानी!
सुनो गुलाब,,,,
तुम यूँ ही महकते रहना!
किसी का श्रंगार, तो किसी का प्रेम बनकर!
किसी की भक्ति तो किसी की शक्ति बनकर!
सुनो गुलाब,,,
तुम केवल पुष्प नहीं हो!
तुम हो प्रतीक, प्रेम, विश्वास और आस्था के!
अपने आप को कभी कम मत आँकना!
क्योंकि तुम हो तो प्यारे सबसे इस जहान में!
सुनो गुलाब,...

सुनो बाबुल

सुनो बाबुल,,,,
मुझे भी आती है याद पीहर की!
जब सब सखी जाती है सावन में
पीहर अपने!
लाड़-लड़ाने अपने हिस्से का प्रेम पाने,
माँ की गोदी, बाबूजी का आशीर्वाद
और भाई की कलाई पर,
अपने प्रेम की राखी बाँधने!
पर,,,, मैं रह जाती हूँ,
अकेली, अपने घर में।
क्योंकि तुम नहीं बुलाते अपनी बिटिया को!
लाखो राखियाँ बंध जाती है,
कलाई पर भैया की!
पर, मेरी राखी तरसती है आज भी,
और होती है व्याकुल बंधन को
अपने वीर की कलाई पर!!
मेरी तो माँ भी तुम हो बाबुल,,
क्योंकि माँ ने जाते समय
सौंपी थी जिम्मेदारी तुम्हें!!
फिर क्यों भूल गए तुम ??
तुम्हारी लाड़ो,, आज भी
करती है प्रतीक्षा तुम्हारे बुलावे की!!
जब सब सखियाँ आती है,
सावन मनाने अपने पीहर में!
पर, तुम्हारा बुलावा नहीं आता!!
सुनो बाबुल
क्यों मुझसे मोह छूट गया तुम्हारा!

गीत

चलो आज फिर जिन्दगी के कुछ पन्ने पलटते है।

कुछ खुशी के कुछ ग़म के
कुछ थोडे से सुकून के।
जो अपने आप में थोड़े से सिमटते है।
चलो आज फिर जिन्दगी के कुछ पन्ने पलटते है।

क्या खोया और क्या पाया?
किसके हिस्से में क्या-क्या आया?
क्यों कुछ रिशते यूँ ही बिखरते हैं।
चलो आज फिर जिन्दगी के कुछ पन्ने पलटते हैं।

जिन्दगी की आपा-धापी में आज मासूमियत छीन ली
जीवन की हर सच्ची मुस्कुराहट छीन ली
खुल के मुस्कुराए हुए अब हर दिन गुजरते हैं।
चलो आज फिर जिन्दगी के कुछ पन्ने पलटते है।

दोस्तो की महफिल और परिवार की खुशियाँ
क्यों बढ़ गई अब दिलो में दुरियां,
उनको पास लोन मे क्यों कदम ठिठकते है!
चलो आज फिर जिन्दगी के कुछ पन्ने पलटते हैं!!

पीहर का वो कमरा

पीहर का वो कमरा
जो आज महज पुरानी
चीजो को रखने के काम आता हैं।
वो मेरे लिए कीमती है बहुत..
मेरे बचपन के खिलौने, सुन्दर सलौने।
पापा की साईकल और मेरी डलिया,
जिसमें घुमाते थे, वो मुझे हर गलियाँ।
मेरे बचपन की रसोई के बर्तन,
एक कोने में आज भी करते खन-खन।
फूटी हुई ढोलक, जो मैने ही फोड़ी थी,
मम्मी की वो साड़ी, जो मैने कभी ओढ़ी थी।
मेरे बचपन की हर याद को,
उस कमरे में देख लेती हूँ,
कुछ खुशी के तो कुछ गम के लम्हे,
इन आँखो में समेट लाती हूँ।
मेरे बचपन की हर छोटी से छोटी चीज
उस कमरे में समाई हैं।
होगा किसी के लिए वो महज बेकार का सामान,
पर मेरे लिए है वो बहुत मूल्यवान।
जब भी पीहर जाती हूँ वो कमरा मुझे बुलाता है,
मेरे बचपन की यादों को दिल में गुदगुदाता है।
सब-कुछ भूलकर कुछ पल सुकून के बिताती हूँ,
थोडी देर के लिए ही सही, मै फिर बच्ची बन जाती हूँ।
तुम मेरे लिए कोई पुराना सामान वाला कमरा नहीं हो।
तुम मेरे लिए कोई खुशी की वजह हो।
जब भी मैं तुम्हारे पास आती हूँ,
अपने बचपन को तुम्हारें करीब पाती हूँ।

दीप तुम जगमगाते रहना

दीप तुम जगमगाते रहना,
वीरान अंधेरी रात में
आस का दीप जलाते रहना,
दीप तुम जगमगाते रहना।
द्वार की देहरी पर,
तुलसी के पौधे पर,
मंदिर में यूँ ही तारे की तरह
टिमटिमाते रहना।
दीप तुम जगमगाते रहना।
मन के तिमिर को,
डूबते हुए मिहिर को,
प्रकाश का आश्वासन दिलाते रहना।
दीप तुम जगमगाते रहना।
अमावस की काली रात में,
पूनम की उजियारी रात में,
चन्द्रमा की शीतलता सजाते रहना।
दीप तुम जगमगाते रहना।
शहीदों की याद में
तिरंगे की शान में,
देश के सम्मान में,
इक दीपक अपने घरो में भी जलाए रखना।
दीप तुम जगमगाते रहना,
दीप तुम जगमगाते रहना।

रावण

मैं हर साल देखती हूँ तमाशा
रावण बनाने और उसे
जलते देखने का।
‘‘क्या रावण बुरा था’’?
जो बरसों से हर साल
जलाया जाता है।
पर,,,,,
रावण तो आज भी जीवित है
इस खोखले समाज में!
जो जीते-जागते देते है
दिखाई हर जगह!
‘‘क्या वो रावण नहीं हैं’’??
जो हर स्त्री पर रखते है बुरी नजर
और करते है उसकी अस्मिता पर प्रहार!
और करते है दिखावा
एक सभ्य समाज के, सभ्य नागरिक होने का।
पर,,,
अपने मन के रावण को नहीं मारते!!!

माँ तुम बहुत याद आती हो

माँ तुम बहुत याद आती हो।''
जीवन में कभी जब हताश हो जाती हूँ,
मैं बहुत ज्यादा निराश हो जाती हूँ।
उम्मीद की कोई किरण मुझे नजर नहीं आती है,
मेरे मन में घोर निराशा छा जाती हैं।
दूर-दूर तक तुम नजर नहीं आती हो,
''माँ तुम बहुत याद आती हो।''
जिम्मेदारी के तले दबकर,
थक-कर चूर हो जाती हूँ,
मन के किसी कोने में,
तुम्हारा आँचल तलाशती हूँ।
तेरी गोदी में थोड़ा सुकून पाना चाहती हूँ,
मैं फिर से तेरी ''गुड़िया'' बन जाना चाहती हूँ।
अब तो सिर्फ तुम स्मृतियों में ही
अपनी धुंधली झलक दिखाती हो,
''माँ तुम बहुत याद आती हो।''
तुम मुझे अपने जैसा बनाना चाहती थी,
मुझमें अपनी छवि निहारना चाहती थी।
तुम मुझमें अपना प्रतिबिम्ब देखती थी,
मुझे बड़े ही स्नेह से सेहजती थी।
पास न होते हुए भी स्वप्न में
बहुत-कुछ सिखा जाती हो,
''माँ तुम बहुत याद आती हो।''
तुम बिन बाबुल का आँगन सूना लगता है,
तेरे आँचल के बिना वो घर सूना लगता है।
अपने आशीष की छाँव अब तुम दे नहीं पाती हो,,
''माँ तुम बहुत याद आती हो।''

सुकून का कोना

हाथ में चाय की प्याली
और,, चेहरे पर थोड़े
से आराम की चाह!
तलाशती घर में
''सुकून का वह कोना''
जहाँ थोड़ी देर ही सही
सुस्तालूँ।
दिन-भर की थकावट और परेशानियों
को परे रखकर!
पर शायद,, ''सुकून का कोना''
खो गया है कहीं,
जो दिखाई नहीं देता।
शायद, मैने ही उसे अनदेखा
कर दिया है,
जीवन की भागमभाग में।
घर, परिवार, समाज के प्रति
उत्तरदायित्वों को पूरा करते-करते।
शायद, इसलिए वह सुकून का वह कोना
मुझे भी भूल गया है।
और हो गया है नजरों से ओझल,
जहाँ मैं कभी सुकून के दो पल बिताती थी।
चाय की चुस्कियों के साथ।

प्रियतम

तुम मेरे हृदय स्पंदन
तुम मेरे माथे का चंदन
दिव्य ज्योति मेरे नयनो की
मेरे जीवन में तुम्हारा अभिनन्दन।
तुम मेरे मस्तक की बिन्दी
तुमसे माँग का सिन्दूर है,
खनकती हाथों में चूड़ियाँ,
तुमसे ही मेरा ये श्रृंगार पूर्ण हैं।
नव जीवन के उजियारा सा
ये सानिध्य तुम्हारा है
विषम परिस्थितियों में भी
साथ तुम्हारा प्यारा हैं।
मेरे नन्हों के अंधरों पर
तुम ही मुस्कान हो।
तुम उनके मन में बसते हो,
तुम ही उनका जहाँन हो।
मेरी सम्पूर्णता का आधार
अब सिर्फ तुम्हीं से है
मेरे हृदय का स्पदंन
अब सिर्फ तुम्ही से है।
शेष बचे जीवन के हर क्षण
संग तुम्हारे बिताना है,
हंसी-खुशी और सुख-दुःख
एक-दुसरे के अपनाना है।

माँ

नम आँखो से तुम्हें कैसे विदा कर दूँ,
तुम्हें अपने दिल से कैसे जुदा कर दूँ,
तुम तो मेरी हर साँस में समाई हो माँ,
तुम्हें अपनी रूह से कैसे अलहदा कर दूँ।

माना कि हकीकत में तुम मेरे पास नहीं हो,
मेरी हर मुश्किलो में मेरे साथ नहीं हो
फिर भी दूर रहकर तुम मेरा हौंसला बढ़ाती हो,
अपने होने का मुझे आज भी अहसास कराती हो।

कभी-कभी अपने आप को बहुत तन्हाँ महसुस करती हूँ मैं,
तेरे आँचल की छाँव में थोड़ा आराम पाने को तरसती हूँ मैं।
अब तुम नहीं तुम्हारा ख्याल मेरे साथ रहता हैं,
''बहुत दूर चली गई हो तुम''

तुम्हारे आशीष का हाथ आज भी मेरे साथ रहता है।
मुझे दूआओं के सिवा तुमसे कुछ नहीं चाहिए,
कभी भी खुद को कभी मैं तन्हाँ समझूँ,
तेरा अदृश्य ही सही, मुझे तेरा साथ चाहिए।

तब बसंत होता है

झर झाते है सूखे पत्ते
आती है नई कोपलें
आ जाती है गेंदे की बहार
तब बसंत होता है...
पीले पुष्प, पीली सरसों,
पीला परिधान, पीला श्रृंगार
बनते है पीले पकवान
तब बसंत होता है...
ज्ञान की देवी, स्वर की जननी,
माँ सरस्वती, वीणा वादनी,
होता है माँ वाद्यदेवी का जन्मोत्सव
तब बसंत होता है...
तन वासंती, मन वांसती
पूरा आलम हो गया बांसती
पूरी धरा जब होगी नव श्रृंगारित,
तब बसंत होता है...

प्रेम दिवस (व्यंग्य)

मौसम में फिर गुलाबी रंगत आ रही हैं
प्रेम दिवस की घड़ियाँ जो करीब आ रही है।
अभिव्यक्ति प्रेम की और प्रखर हो जाएग,
चौदह फरवरी भी कुछ खास हो जाएगी।
प्रेमी युगल का प्रेम और परवान चढ़ेगा,
एक-दुसरे का प्रेम सिर चढ़ कर बोलेगा।
ये दिवस एक उत्सव का रूपा लेगा
अपने-अपने प्रेम को मँहगे-मँहगे तोहफे देगा।
हर जगह सिर्फ प्रेमी जोड़े नजर आएँगे
अपने अंदास से प्रेम का इजहार करते नजर आएँगे।
सच पूछो तो इस दिन को केवल एक दिवस में बाँधना नहीं चाहिए,
हर दिवस को प्रेम दिवस ही मानना चाहिए।
अपने-अपने प्रियतम से इजहारे मोहब्बत करना चाहिए,
हर दिन प्रेम दिवस के रूप में मनाना चाहिए।

वेलेंनटाईन नहीं था

हमारे प्रेम की सुगंध
तब भी फैलती थी,
मुँह मीठा तब भी होता था।
जब ये वेलेनटाईन नहीं था...
हम साल भर इन दिनों की
प्रतीक्षा नहीं करते थे।
हर दिन प्रेम दिवस के दिन थे।
बिना उपहारो के ये दिल खुश था।
जब ये वेलेनटाईन नहीं था...
मैं तुम्हारी और तुम मेरी
मुस्कान देख हो जाते थे,
साथ बिताए हर पल खास हो जाते थे।
जब ये वेलेंनटाईन नहीं था...
बिना उत्सव के गुलाब मेरे बालो में सज जाते थे,
तुम भी उसकी महक से महक जाते थें।
वो प्रेम का एक अनोखा ही अहसास था।
जब ये वेलेंनटाईन नहीं था...

प्रेम-दिवस

तुम नयनों का अंजन हो
और अधरो की प्यास,
प्रति तुम्हारी बहुत प्रिय है,
जैसे हृदय में स्वास।
तुम धीरे हो, मैं चंचल हूँ
तुम जलधि, मैं सरिता की कल-कल हूँ,
तुम शरद, मैं शीतलता हूँ
तुम धैर्य, मैं विह्लता हूँ।
मैं प्रखर और तुम मुखर
प्रेम बसा है मन में हर प्रहर
स्वीकृति मौन हुई तो क्या हुआ,
इसकी है मुझे मन ही मन खबर।
विपरीत विचारधारा हैं,
और रूचियों में भी है असमानता
निःस्वार्थ और निश्चल प्रेम,
इन सबको नहीं मानता।
तुम्हारा प्रेम मेरा स्वन्दन है
साथ माथे का चंदन है
मेरे सुख-दुःख के साथी
तुमको मेरा हृदय से वंदन हैं।

मेरे घर अब गौरैया नहीं आती

जहाँ भोर का प्रारम्भ
उसकी करलव से होता था
संग उसके पूरा समूह होता था,
अब दूर तक उसकी आवाज सुनाई नहीं आती,
मेरे घर अब गौरैया नहीं आती...
कभी रोशनदान तो कभी पंखे पर उड़ आती थी,
रसोई घर में थोड़ा खाना मुँह में भर ले जाती थी,
भरी बाल्टी में से वो अब पानी पीने नहीं आती,
मेरे घर अब गौरैया नहीं आती...
घर के किसी कौने में वो घोंसला बनाती थी,
न जाने कहाँ-कहाँ से घास और तिनका बीन लाती थी
बिखरे तिनके वो अब उठाने नहीं आती,
मेरे घर अब गौरैया नहीं आती...
न जाने क्या भूल हुई मुझसे
शायद गौरैया रूठ गई मुझसे
अब तो अपनी इक झलक दिखाने भी नहीं आती,
मेरे घर अग गौरैया नहीं आती...

हास्य कविता

देखी सुन्दर नार
देख के मन ललचाए
उसकी तिरछी चितवन पे
मन-मोहित हो जाए।
मन-मोहित हो जाए,
जिस ओर वो देखे
सबको बस वो ही नजर आए।
उसके रूप को देख के
बुढ़े भी मूँछो पर ताव लगाएँ
कपड़े पहने टिनोपाल के
बालो में खिजाब लगाएँ
घर की सुन्दर नार को
ऐसे बिसराए,
घर की मुर्गी छोड के
बाहर की दाल खाने जाएँ।
सुघड़, सुशील धर्मपत्नी को
जो बाहरवाली के लिए बिसराए,
थोड़े से सुख की खातिर
पर नारी से भी धोखा खाए।

बुजुर्ग

बुजुर्ग हमारे बरगद का पेड़
हम उनकी शाख हैं,
उन्होने हमें ये जीवन दिया है,
वो हमारे लिए बहुत ही खास है।
हम कच्ची मिट्टी के थे,
उन्होने रूप, रंग, आकार दिया
अपने बच्चो के सपनो को
उन्होने ही साकार किया।
हमारी सारी फरमाईश में
अपने सपने खोये है,
हम जीवन में कुछ बन जाए,
आँखो में कुछ ख्याब संजोए है।
हम कितनी भी ऊँचाइयाँ छू ले
जमीन से कदम न हटाएँगे,
उन्होने हमें ये जीवन स्वर्ण दिया है
इसका कर्ज हम कभी चुका न पाएँगे।
उनकी छत्र-छाया हम पर बनी रहे
उनका आशीष का हाथ सदा हमारे साथ रहे।

मेरी माँ की दीवाली

हफ्तों पहले घर की साफ
सफाई में जुट जाती थी,
हर दीवारो को अपने
प्रेम से सजाती थी।
नित-नये पकवान
रसोई की शान बढ़ाते थे,
वे घर का हर कौना
अपनी सुगन्ध से महकाते थे।
सब सदस्यों को वो नए परिधान से सजाती थी,
''मेरी माँ की दीवाली ही बस''
सादा साड़ी में निकल जाती थी।
आँगन की तुलसी पर वो
रोज दिया जलाती थी,
घर में काम करने वालों को
पापा से ईनाम दिलवाती थी।
खुद घर की लक्ष्मी थी
पर, लक्ष्मीपूजन पर
कभी न सज पाती थी।
सबका ख्याल रखने में,
वो खुद को भूल जाती थी।
''मेरी माँ की दीवाली''
सबको खुश रखने में
बरस-दर-बरस यूँ ही गुजर जाती थी।

मौसम

किस मौसम की बात करूँ,
किस ऋतु में अपना हाल कहूँ,
जिस मौसम में प्रिय मिले,
उस मौसम में उनसे दिल की बात कहूँ।
सर्दी की रातें लम्बी
गर्मी के दिन बीते जाएँ,
रिमझिम बरखा मन तरसाए,
फिर किस मौसम में बात कहूँ।
हर मौसम यूँ ही बीता जाए,
मन का हाल उनसे कहा न जाए,
प्यार का मौसम कब आएगा,
जब अपने प्रियतम से हाल कहूँ।
वो मेरे दिल की धड़कन है
उनसे प्यारा उनका मन है,
वो मेरी आँखो का ''सपना''
ये बात मैं उनसे कैसे कहूँ।
किस मौसम की बात करू,
किस ऋतु में अपना हाल कहूँ,
जिस मौसम में प्रिय मिले,
उस मौसम में उनसे दिल की बात कहूँ।

कविता

मैं बहती चंचल नदी,
तुम ठहरे सागर
मैं मोहिनी चपल कामिनी
तुम गागर में सागर।

मैं नयनो का कजरा हूँ,
तुम कजरे की धार
तुम्हारे प्रिय बोल-वचन
करे हृदय में प्रहार।

अधरों पर तेरा नाम धरू
लिए प्रिय मिलन की आस
जलधि मेरे साथ खड़ा हैं,
फिर भी न बुझे मेरी प्यास।

मैं धरती, तुम अम्बर हो
तुम जीवन का सम्बल हो
इस महके जीवन में जैसे
तुम बनके आए संदल हो।

तुमसे अधरो की मुस्कान हो
तुम मेरा श्रंगार हो,
तुम बिन मेरा कोई अस्तित्व नहीं है,
तुम जीवन का आधार हो।

शब्द

शब्द-शब्द का फेर है,
शब्द के हाथ न पाँव,
एक शब्द घाव करे
एक शब्द मरहम की छाँव।

शब्दो की अपनी सीमा है,
शब्दो का अपना विस्तार
कभी शब्द निराकार है,
कभी शब्द आकार।

शब्द मन की शीतलता है,
ते शब्द कभी आघात
शब्द हृदय की विहलता,
शब्द कभी प्रतिघात।

शब्द कवि की प्रेयसी
शब्द मन का मधुमास
शब्द लेखक की बेबसी
शब्द भविष्य का आभास।

शब्द की अपनी महिमा है
शब्द है अपरम्पार,
शब्द साहित्य का श्रृंगार है,
शब्द का है विशाल संसार।

गजल

तम्मनाओं की म़जार पर दो फूल छोड़ आई हूँ,
ए जिन्दगी मैं तुझसे मुँह मोड़ आई हूँ।

न खुश हूँ, न किसी से खफा हूँ,
बस सभी से थोडी जुदा हूँ,
हसरतों की वो हर दीवार मैं तोड़ आई हूँ,
ए जिन्दगी मैं तुझसे मुँह मोड़ आई हूँ।

न कसमें साथ थी, न रशमें साथ है,
बस थोड़े हसीन लम्हें साथ है,
वो दर्द भरी सौगात मैं पीछे छोड़ आई हूँ,
ए जिन्दगी मैं तुझसे मुँह मोड़ आई हूँ।

शिकवा नहीं है उससे, शिकायत भी कुछ खास नहीं हैं,
जिंदगी की कश्मकश में बस वो अब साथ नहीं हैं।
सबकी खुशियों की दुआ मैं रब के दर पे छोड़ आई हूँ,
ए जिन्दगी मैं तुझसे मुँह मोड़ आई हूँ।

मुक्कमल तो सब कुछ यहाँ होता नहीं हैं,
सब का सबकुछ यहाँ खोता नहीं है,
अपनी कश्ती की किनारे तक छोड़ आई हूँ,
ए जिन्दगी मैं तुझसे मुँह मोड़ आई हूँ।

दुनिया की रीत भी अजब-गजब है,
सबके अपने फलसफे और अपने सबब हैं,
अच्छे-बुरे सबक सब पीछे छोड़ आई हूँ,
ए जिन्दगी मैं तुझसे मुँह मोड़ आई हूँ।

चरित्रहीन स्त्री

जब किसी पुरूष से उसकी मित्रता हो जाती है,
वो मन नहीं मन थोड़ा ज्यादा जी जाती है,
थोड़ा हँसती है, थोड़ा मुस्कुराती है,
तब समाज की नजरों में वो स्त्री चरित्रहीन हो जाती है।

थोड़ा मन के दायरे से वो बाहर आ जाती है,
अपनी पसंद का कुछ थोड़ा भी अच्छा कर जाती है,
अपनी भावनाओं का खुलकर कह जाती है,
तब समाज की नजरों में वो स्त्री चरित्रहीन हो जाती है।

अपने मन का पहनावा जो कभी पहनकर जाती है,
लोगो को वो उनकी आँखों में खटक जाती है,
अंगूर खट्टे है वाली कहावत जैसी किसी हाथ नहीं आती है,
तब समाज की नजरों में वो स्त्री चरित्रहीन हो जाती है।

स्त्री - पुरूष की मित्रता लोगो को पसंद नहीं आती है,
डनकी नजरों में क्यों अशलीलता की गंध आती है,
स्त्री केवल भोग की वस्तु ही नजर आती है,
तब समाज की नजरों में वो स्त्री चरित्रहीन हो जाती है।

कुछ रिश्तों के नाम नहीं होते

कुछ रिश्तो के नाम नहीं होते,
वो निभाते है सालों-साल
जीवन का हर क्षण,
जो देता है हमें सुकून!!
एक आस, एक उम्मीद, एक
सपना, जो पलता है इन
खूबसूरत आँखो में!
जिन्हें मिलते है पंख उडने को उनसे,,
जिन रिश्तो के नाम नहीं होते!
क्या रिश्तो का नाम होना जरूरी है??
नहीं पता मुझे,
भाई, मित्र, सखा,
या अपने मन को समझने वाला!
नहीं,,,,
जो मन से जुड़े, मन की गहराई को समझे,
वही कोई अपना है!
भले ही कोई कहे,,,,,
कि कुछ रिश्तो के नाम नहीं होते!

गजल

अब हर रोज उनसे मुलाकत नहीं होती,
हर छोटी-बड़ी कोई खास बात नहीं होती।

कुछ मसरूफ वो भी है, कुछ समय हमारे पास भी नहीं,
दूर रहने की वजह भी कोई खास नहीं,
चंद लम्हो की भी अब बरसात नहीं होती,
अब हर रोज उनसे मुलाकात नहीं होती।

पहले आते-जाते दुआ-सलाम हो जाती थी,
उनकी मुस्कान देख दिन की शुरूआत हो जाती थी,
अब नजरें-इनायत सुबह-शाम नहीं होती,
अब हर रोज उनसे मुलाकात नहीं होती।

कभी खयालों में जिक्र हुआ करता था, तुम्हारा,
तुम्हारे साथ नाम जुड़ा करता था हमारा,
उस दौर की हर वो बात आज नहीं होती,
अब हर रोज उनसे मुलाकात नहीं होती।

कुछ उनकी मजबूरी है, कुछ मेरी जिम्मेदारियाँ हैं,
कुछ वक्त की पाबन्दी है, कुछ हालात की मजबूरियाँ है,
शिकवो-शिकायत की अब हर बात नहीं होती,
अब हर रोज उनसे मुलाकात नहीं होती।

याद वो भी करते है, याद मुझे भी आती है,
कुछ खट्टी-मिठी याद जेहन में तरोताजा हो जाती है,
हर एक ख्वाब की ताबीर नहीं होती,
अब हर रोज उनसे मुलाकात नहीं होती।

प्रेमपाती

मन से मन का रिश्ता जोड़ूँ
कह दूँ मन की बात,
झिझक हिय की खोलकर
करू स्नेह शुरूआत।

प्रेम की पाती, भाव के अक्षर,
मन की विह्लता के बोल है,
मुखर मौन की अभिव्यक्ति,
और प्रति के दो बोल है।

मुखमंडल पर जो,
आज ये लाज की लाली छाई है,
प्रिय मुख दर्शन के लिए,
ये आज बावरी आई है।

सुखद मिलन की आस लिए,
खूब किया श्रृंगार,
सजन के देखे बिना,
ये सब है बेकार।

प्रेम समर्पण की बस
यही है परिभाषा,
अपने प्रिय का साथ हो तो,
कभी जीवन में न हो निराशा।

वनवास

चौदह वर्ष का वनवास
केवल राम, सीता और लक्ष्मण,
ने नहीं झेला...
उनके साथ उर्मिला, भरत, माता कौशल्या
और सुमित्रा ने भी भोगा वनवास!!
अपने प्रियजनो का विछोह!
जिसकी पीड़ा केवल शब्दों में
व्यक्त नहीं हो सकती!
वनवास उर्मिला को भी मिला,
पति के विरह का,
भरत को भाई के विछोह का,
और,,, माताओं को उनके पुत्र का!
चौदह वर्ष का वनवास
आसान नहीं था,
उनके लिए,,,
जिनके बारे में कभी कुछ कहा नहीं गया,,,
कि वे भी वनवास का दुःख भोगे हैं,
बिना किसी को अपनी पीड़ा दिखाएँ,
करते रहे अपने-अपने कर्तव्यों का निर्वाह,
इन चौदह वर्षो तक!!

बागी

हाँ मैं बागी हूँ, बगावत करती हूँ,
खुद से मौहब्बत करती हूँ, तो क्या बुरा करती हूँ।

दूसरों की राह में फूल बिछाए तब खुश हुए,
बाग़ से चंद कलियाँ खुद के लिए चुनी, तो क्या बुरा करती हूँ।

तमाम उम्र सबकी तीमारदारी में गुजार दी,
अब थोड़ा खुद को आराम देती हूँ, तो क्या बुरा करती हूँ।

मतलबी दुनिया के मतलबी रिशते है आजकल,
मैं आजकल खुद से मतलब रखती हूँ तो क्या बुरा करती हूँ।

मेरा खुश होना शायद हर किसी को अच्छा न लगे,
मैं अब किसी परवाह नहीं करती हूँ तो क्या बुरा करती हूँ।

बहुत मिलते है सलाह देने वाले मुझे अक्सर,
मैं खुद की बात पर अमल करती हूँ, तो क्या बुरा करती हूँ।

ये जमाना बड़ा मतलब परस्त है 'सपना'
मैं केवल अपने दिल की सुनती हूँ तो क्या बुरा करती हूँ।

औरते भी अजीब होती हैं

हम औरते भी अजीब होती है।
मन ही मन खुश होती है,
मन ही मन रो जाती है,
कभी खुलकर जी जाती है,
तो कभी उदास हो जाती है।
हम औरतें भी अजीब होती है।

जरा सी बात पर रूठ जाती है,
थोड़ा मनाने पर मान भी जाती है,
सरा जहाँ पाने की तमन्ना नहीं रखती
थोड़ी खुशियों में जी जाती हैं।
हम औरते भी अजीब होती है।

खुद को मजबूत दिखाती है पर,
जरा सी बात पर अंदर से टूट जाती है,
स्वयं का अस्तित्व भी भूलकर
नदी सी होकर भी संमदर में डूब जाती है।
हम औरतें भी अजीब होती है।

इनकी दुनिया, इनका दायरा सीमित ही सही,
खुद को हर हाल में खुश रख लेती है,
कभी दूसरो के लिए, तो कभी अपनो के लिए,
अपने आप को पूरा बदल लेती है।
हम औरतें भी अजीब होती है।

बसंत हो गया

खेतो में सरसों पीली,
बागों में पीले पुष्पों की बहार है,
देखो आज वसुन्धरा ने भी
पीला किया श्रृंगार है।

है प्रतीक्षा तुम्हारी
तुम्हारे आगमन की है बारी,
अब देन न करो ''बसंत''
तुम्हारे स्वागत को खिली है फुलवारी।

पवन हिलोरे ले रही,
मन मतवाला हो रहा,
पीली धरती, पीला अंबर,
आज तो जग भी पीला हो रहा।

प्रीत बसंत, मीत बसंत,
संगीत बसंत हो गया,
हृदय की हर धड़कन का
स्वर बसंत हो गया।

गजल

मैं अधूरी नज्म हूँ, मुझे पूरी कर दो,
आके मेरी जिन्दगी में, अपनी कमी पूरी कर दो।

कल क्या पता मुझे पढ़ने का तूम्हें मौका न मिले,
कुछ अपनी, कुछ मेरी ख्वाईशो को तुम आज ही पुरी कर दो।

मुकम्मल मैं भी नहीं, मुकम्मल तुम भी नहीं,
एक हो जाएँ हम, तुम ये जरूरी कर दो।

रास्ता आसान नहीं, फासले भी बहुत है,
थोड़ा तुम बढ़ो, थोड़ा हम बढ़े, ये दूरी थोड़ी कम कर दो।

थोड़ा ही सही बेशक, मगर मुझे कभी पढ़ो तो सही,
कुछ अपने शेर शामिल कर, मेरी ये गजल पूरी कर दो।

कुछ अहसास जिंदा रहने दो जीने के लिए ''सपना'',
कुछ ख्याब सूख रहे है मेरे, उन्हें अपनी नमी से भर दो।

गजल

गैर होके भी अपने से लगते हो,
हकीकत नहीं एक सपने से लगते हो।

तुम्हें याद न करूँ तो दिन नहीं गुजरता मेरा,
तुम्हारी हर बात में, तुम मुझे सच्चे से लगते हो।

लाख बुराईयाँ सही तुममें मगर,
फिर भी न जाने क्यों तुम मुझे अच्छे से लगते हो।

मुझे मनाकर खुद ही रूठ जाते हो,
खुदा कसम हर अदा से तुम बच्चे से लगते हो।

तुमसे शुरू तुम पर ही खत्म मेरी कहानी है,
मेरे हर किरदार में तुम फूलों से सजे लगते हो।

कहीं टुटकर काई अपना न बिखर जाए ''सपना'',
इस हकीकत की हर पल की खबर से तुम लगते हो।

गजल

जिक्र तेरा, फिक्र तेरी, ख्याल तेरा है,
है तसल्ली इस जहाँ में, तु सिर्फ मेरा है।

न जाने क्यों तू खुदा सा लगता है मुझे,
सज़दा सभी करते है तुझे, पर ये खुदा मेरा है।

हर पल साथ रहा, कभी साथ छोड़ा नहीं,
कभी मुझे झुकने न दिया, तू गुरूर मेरा हैं।

मैं भी हर हाल में साथ निभाऊँगी तेरा,
मुश्किल कैसी भी हो, ये हौंसला मेरा हैं।

मैं खुश हूँ, ये वजह तुमने दी है,
उसकी हर खुशी पर हक मेरा हैं।

मेरी हर चाह का इल्म उसे है ''सपना''
उसकी आँख का हर ख्वाब अब मेरा हैं।

गुलाब

सुना है तेरे शहर में गुलाब बहुत है,
उसकी खुशबू मेरे शहर से होकर गुजरती है,
भले ही रौनक तेरे शहर में हो,
तेरे शहर के गुलाब से मेरी गलियाँ महकती है।
गुलाब है तो चमन में बहार है
हर लब पर सिर्फ उसका ज़िक्र बेशुमार है,
वो जब खुल के मुस्कुराते है तो बहार आती है,
जब गुलाब की पंखुड़ियां भी खिल जाती है।
माना तुम्हें गुलाब पसंद है, पर हम भी उनके कम मुरीद नहीं है।
गुलाब को चाहने वाले हम भी कुछ कम नहीं है।
तेरे हिस्से के कुछ गुलाब से मेरी झोली भर दे
मेरी जिंदगी को खुशियों से भर दे,
ये गुलाब जिंदगी है मेरी,
इन गुलाबों से मेरी जिंदगी महकती है।

बचपन वाली होली

धूल-मिट्टी में सने हुए,
हाथ में लिए गुलाल
अपनी ही मस्ती में मस्त
नहीं था काई मलाल।

दिनभर सबकी डाँट खाते,
फिर भी घर में डट न पाते,
गुझिया, पपड़ी और मिठाई,
अपनी मित्र मंडली को खिलाते।

होली में हुड़दंग मचाती,
हम बच्चों की टोली,
सबसे प्यारी, सबसे न्यारी
थी वो बचपन की होली।

छूटा बचपन, खो गयी होली
जने कहाँ गए सब हमजोली,
अब तो हमको याद नहीं हैं,
खेली नहीं कबसे खुलकर होली।

बहुत याद आती है मुझको
वे रंग-बिरंगी होली,
कभी भूल न पाती मुझको
वो बचपन वाली होली।

गजल

भीड़ में भी वो शख्स अक्सर तन्हां पाया है,
जे अपनों से कभी न कभी तो ठोकर खाया हैं।

सबको खुश करने में उसकी उम्र गुजर गई,
खुद न जाने वो कीस मिट्टी से बनकर आया है।

उसकी पनाह में उसके अपने महफूज है,
पर वो अपनी पनाहगाह न जाने कहाँ छोड़ आया है।

रब की दुनियां के खेल-तमाशे भी निराले है,
कठपुतली की तरह हमको वो नचाता चला आया है।

कोई पूरा तो काई अधूरा है यहाँ पर,
किसी ने बहुत कुछ खोया तो किसी ने थोड़ा ही पाया है।

मोती किसी के दामन में, किसी के हिस्से में खाक है,
फिर भी तेरे दर पे, तेरे बन्दों ने सर झूकाया है।

स्त्री तूम पीड़ा में हो

सुख की अनुभूति को रखकर परे
विशाल नभ को ताकती और,,
ढूँढती अपने हिस्से का आकश।
धरातल की गहराई से भी
ज्यादा मन के भीतर रखती असीम महत्वकांक्षा,
स्वप्न, खुलकर स्वयं से प्रेम
करने की, क्षितिज के मिलन की
और,,
अपने अंदर चल रहे
द्वन्द को शांत करने की।
स्त्री तुम पीड़ा में हो...
क्योंकि तुम्हे नहीं है अधिकार
अपनी आवाज उठाने का,
बड़ों के सामने कुछ कह पाने का।
तुम सिर्फ सह सकती हो
पर कह नहीं सकती अपने मन की व्यथा,
उन अपनो से भी नहीं,
तो तुम्हारे सब कुछ होने का
भरते है दम, सारी उम्र
दिखावे के तौर पर।
स्त्री तुम पीड़ा में हो...

बेटी

मन के भीतर से अचानक
एक आवाज आती है
रूदन सुनाई देता हैं और सिसकिया सुनाई आती।
रूधे गले से मानो वद्ध कुछ कहना चाहती है,
''माँ'' मैं इस दुनिया में आना चाहती हूँ।
और भी कुछ कहना चाहती है,
क्यों मैं इस संसार को देख नहीं सकती?
क्यों मैं तेरे आँचल में, मैं सो नहीं सकती?
क्यों मैं बोझ लगती हूँ सबको?
क्या इतनी बुरी लगती हूँ सबको।
माँ उसका रूदन सुनकर कुछ नहीं पाती है।
बस मन नहीं मन घुटके रह जाती है।
क्यों समाज की इस बुराई का वह विरोध
नहीं कर पाती है।
वो अपनी बेटी को इस जहाँ में लाना चाहती है।
पर लाने से डरती है।
वो इसलिए, कि माँ की कोख से सुरक्षित
कोई उसका घर नहीं हैं।
बेटियों का अस्तित्वि यहाँ सुरक्षित नहीं हैं।
मानव, दानव के भेष में घूम रहे हैं।
अपनी ही बहु - बेटियों को तोंच खसोट रहे है,
इसलिए माँ उसकी सिसकियों को
नजर अंदाज कर रही हैं।
आज के समाज को देखते हुए,
वो अपनी बेटी को जन्म देने डर रही है।

सर्मपण

शब्द गीतो को समर्पित
प्राण जीवन को समर्पित
और क्या अर्पण करू तुम्हें मैं,
मेरा सब कुछ तुमको समर्पित।

मन की हर बात समर्पित
वीणा के हर तार समर्पित
मेरी बाँहो के हार समर्पित
बगिया की बहार समर्पित।

मुझको सबका जो प्रेम मिला है
उनको मेरी भी स्नेह समर्पित
मन समर्पित, तन समर्पित
जीवन का हर आनन्द समर्पित।

जिन्होनें मुझे ये जीवन दिया है
ऐसे माता-पिता को मेरा सब कुछ समर्पित
और उनको क्या अर्पित करू मैं,
मेरे जीवन की हर साँस समर्पित।।

गजल (जिन्दगी)

रस्मों-रिवाज की आग से जलती है जिन्दगी
कुछ इस तरह से गुजरती है जिन्दगी।

बनावटी फूलों में कभी महक, नहीं होती,
बनावटी फूलों से लोगो की महकती है जिन्दगी।

ये शहर तो कोई दीवाना है दोस्तो
इसके दीवाने पन से डरती है जिन्दगी।

हर कोई यहाँ मतलबी सा लगती है
वक्त पड़ने पर पैर पकड़ती है जिन्दगी।

फिर भी ये शहर हमें अपना लगता है
इसे अपनाने को तरसती है जिन्दगी।

बेगानो की दुनिया में कोई अपना नहीं हैं,
किसी अपने को ढूंढने निकलती है जिन्दगी।

ये शहर इक धुधला सपना है दोस्तो,
इसे देखने को तरसती है जिन्दगी।

लड़कियाँ

हजारो आंसुओं को लेकर इस दुनिया में आती हैं लड़कियां
तमाम पाबंदियों और असूलों में पलती बढ़ती हैं लड़कियां।।

इक खुशी का झोंका भी आयें उनके मन में
उस खुशी को अपने आप में छुपाती है लड़कियां।।

कुछ भी कहने का उसे दुनिया में हक नहीं
अपनी खामोशी को अपने में समाती है लड़कियां।।

लाख ऊचाईयों पर भी पहूंच जायें तो क्या
अपने पैरो को जमी से न हटाती हैं लड़कियां।।

किसी हैवानियत के बन्दो की नज़र न पड़े
इसलिए खुद को पर्दो में छुपाती हैं लड़कियां।।

जो मिली उसे आजादी, उसकी क्या फायदा
अपनी मर्जी से न कुछ कर सकती है लड़कियां।।

दुःखों और परेशानियों को सीने में छुपाकर
हर वक्त होठों पे मुस्कान सजाती है लड़कियां।।

जिन्दगी

वो खुशी ही क्या, जो जिन्दगी न दे
वो जिन्दगी हो क्या, जो थोड़े ग़म न दे।
ग़म होगा तो उसका अहसास होगा,
वो अहसास ही क्या, तो चाहत न दे।

चाहत न होगी तो, कोई चाहेगा किसे
वो चाहत ही क्यां, तो स्पर्श न दे।
वो स्पर्श ही क्या, जिसमें चुभन न हो,
वो चुभन ही क्या, जो दर्द न दे।

वो दर्द ही क्या, जो दर्द न दे।
वो दर्द ही क्या जो दिल न धड़काये।
वो धड़कन ही क्या, जो दिल न दे।
वो दिल ही क्या, जिसमें प्यार न हो,

वो प्यार ही क्या, जो जिन्दगी न दे।
वो जिन्दगी ही क्या, जिसमें सपना न हो,
वो सपना ही क्या, जो हकीकत न दे।

ग़ज़ल

जिन्दगी मोम की तरह पिघलती रही
हर रात शमा बनकर जलती रही।

जख्मो को चुपके-चुपके सहती रही
बेगाने होंठो पे तब्बसुम सजाती रही।

दुखो को छुपाकर गम में हंसती रही
जिन्दगी की शाम इस तरह ढ़लती रही।

जिन्दगी मोम की तरह पिघलती रही।
हर रात शमा बनकर जलती रही।

कविता (शराबी)

गिलास में भरकर जो जाम,
छलक जाता है
शराबी को शराब पीने में
मजा आता है।
पीने के बाद होश न जाने
कहाँ जाता है
चारों तरफ का संमा मदहोश
नजर आता है
न उसूलो का ध्यान आता
है न रिश्तो का
उसे तो सिर्फ शराब का जाम
नजर आता है
मदहोशी के आलम में एक पाँव
नाली में जाता है तो
दूसरा पत्थर से
टकराता है
हर शराबी का यही अन्जाम
नजर आता है
हर रोज हाँथ में एक जाम नजर आता है।

कविता (खामोशी)

ये होंठ तुम्हारे खामोशी के
दिल में मेरे हलचल मचा देंगे।

अधरो पे ये मुस्कान सजाके
इक प्रीत का दिया जला देंगे।

खामोश निगाहें मदहोशी की
मेरे मन की बात बता देंगे।

उस उजली धूप को
इस दिल में अपनी जगह देंगे।

तुम्हारे कोमल स्पर्श को हम
अपने मन मन्दिर में बसा देंगे।

इस हसीन सपने को हम
सच करके हम दिखा देंगे।

गौरेया

नन्हे नन्हे पंख फैलाकर उड़कर
आई गौरेया
घर आंगन में धुममचाकर फुदक-फुदक
चलती गौरेया

इस डाली से उस डाली पर उड़ - उड़
कर जाती गौरेया
चीं-चीं की आवाज सुनकर
मन को मोह जाती गौरेया

प्रेम से उसको पास बुलाओ तो,
अपने पसा न आती गौरेया
लगे सूखने कंठ कभी तो
अपनी प्यास बुझाती गौरेया

साँझढले तो सभी पखेरू
अपने-अपने घर को जाए
संग उन्हीं के साथ उड़े वो
घर अपने पहुँचे गौरेया।

कविता

लोटा दो मुझे वो, मेरा गुजरा जमाना
मुझे देखकर यूं, अजनबी बन जाना
परछाईयों की तरह जिन्दगी से चले जाना
कोरे कागज पर जैसे अलविदा लिख कर जाना।
कभी दबे पाँव मेरे कमरे में आना
और मुस्करा कर वो अपनी झलक दिखाना
वही याद सिर्फ अब यादें ही बन गई है
उस याद को तुम एक लम्हा बनाना।
वो स्वेटर में छुपकर, सर्दी में मिलना
हमें याद आये वो गुजरा जमाना।
हर वक्त मिलने को तुम्हारा तरसना
किसी बहाने से हमारे घर में आना
इक झलक पाकर वापस चले जाना
लोटा दो मुझे वो, मेरा गुजरा जमाना।
किसी बात पर मुझको गुस्सा दिलाना
मेरा रूढना, फिर तुम्हारा मनाना
मेरी जिन्दगी में तुम्हारा आना
लोटा दो मुझे, मेरा ''सपना'' सुहाना।

इल्तजा

मेरे इश्क की बस तुमसे
इती इल्तजा है,,,,
मुझे किसी मकबरे या प्रेम का कोई
प्रतिरूप नहीं चाहिए!!
बस,
जब किसी दिन मेरी याद में तुम उदास हो
और मेरी कमी तुम्हें सबसे ज्यादा खले,
तब मेरी कब्र पर दो लाल गुलाब
चढ़ा देना!!
उसकी खुशबू में बसी तुम्हारी चाहत
मेरी रूह तक पहुँच जाएगी!!
और,,,
जब मुझसे मिलने की तलब महसुस हो
तो, हर उस जगह जरूर जाना
जहाँ आज भी हमारे होने के निशाँ
कायम है,,,
जो देते है गवाही आज भी हम दोनों
के इश्क की!!!

स्त्री (कविता)

उसका कोई रंग नहीं,
पर हर रंग में रंग जाती है,
जीवन की बगिया बन वो
घर का कोना महकाती है।
चिलचिलाती धूप में वो
शीतल छाँव बन जाती है,
शोर-शराबे के शहर से दूर
सुकून सा एक गाँव बन जाते है।
मुट्ठी भर चाहतें सीने में
छुपा लेती है,
अपनो के प्रेम को मन मे
बस लेती है।
खुद के अस्तित्व की तलाश
जरी रहती है उसकी,
वे ''स्त्री'' है साहब,
समंदर को भी अपने सीने में
जगह देती है।
उसकी नज़ाकत को उसकी
कमजोरी न समझना,
वो प्रकृति को जन्म देकर
सृष्टि को नव-जीवन देती है।

नाम – श्रीमती सपना परिहार

जन्मतिथि –२७/०६/१९७४

शिक्षा – एम.ए. (समाज शात्र, हिंदी), बी.एड.

संप्रति – शिक्षिका

मोबाईल – 9827793288

ईमेल – pariharsapna5@gmail.Com

पता – G/91, बिरलाग्राम, नागदा, जिला–उज्जैन, पिनकोड–४५६३३१

साहित्यिक जानकारी–लगभग २५ वर्षो से साहित्य साधना में प्रगतिशील, कई मंचो पर काव्य पाठ ,कई संस्था से जुड़ने का सौभाग्य।

सम्मान – शब्दशक्ति सम्मान २०१६, सर्वश्रेठ कवियित्री सम्मान २०१७, वुमन आवाज सम्मान२०१८, अभिव्यक्ति सम्मान २०१४, अल्फाज ए लेखनी सम्मान २०१९ आदि।

प्रकाशन – सावित्री का संसार (सांझा काव्य संग्रह),नव पल्लव (सांझा काव्य संग्रह), गौरैया(सांझा काव्य संग्रह),सृजन ,शब्द से शक्ति का(सांझा काव्यसंग्रह),आसपास से गुजरते हुए(सांझा लघुकथा संकलन) मेरे मन की अभिव्यक्ति(पहला लघुकथा संकलन), आकाशवाणी इंदौर से कविताओं और सामयिक विषयों पर विचार रखने का सौभाग्य।

अन्य जानकारी – कई सामाजिक संस्था के साथ कार्य करने का सौभाग्य।

हिन्द व हिन्दी का सम्मान, है प्रमाण देशभक्ति का.. आइए करें सृजन, शब्द से शक्ति का...

15, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी, जिला– बालाघाट (म.प्र.), पिन 481331, मो.– 9424765259, ईमेल– antrashabdshakti@gmail.com

पं.क्र. (04/21/05/207665/19)

अन्तरा शब्दशक्ति

अन्तरा शब्दशक्ति के लिंक्स

Website:- www.antrashabdshakti.com

Facebook page:- https://www.facebook.com/antrashabdshakti/

Fecbook group:- https://www.facebook.com/groups/antraashabdshakti/

978-93-5372-240-1

मूल्य 250/–